THE HINDU

Date: 14-07-26

The right path for India's nuclear power development

The country's nuclear future must balance growth with self-reliance and safety

Meera Shankar, [Former Indian Ambassador to the United States]

Ajay Shankar, [Distinguished Fellow, TERI, and former Secretary, Department of Industrial Policy and Promotion (DIPP), Government of India]

International sanctions were imposed on India after its peaceful nuclear test of 1974. The India-United States civil nuclear deal, which was signed in 2008, ended the restrictions on the import of uranium and of nuclear power plants, with some critical exceptions. The free import of natural uranium has enabled India to grow its nuclear programme. Negotiations with major western nuclear power plant suppliers were started but had to be given up as their plants were far too expensive.

Homegrown nuclear advantage

Sanctions forced India to innovate. Every part going into India's nuclear plants was designed, developed, tested, and manufactured in India in patient partnerships between the Atomic Energy Commission (AEC) and Indian firms. The unit size of India's nuclear power plants went up from 200 MW to 500 MW. Now, 700 MW units have been developed. Four units are under construction and another 10 are being developed. India now makes the cheapest nuclear power plants in the world, costing approximately $1,700 per Kw. The South Korean plants cost more, around $2,200 per Kw, the French over $5,500 per kw, and the U.S. $15,000 per Kw. Therefore, India has the potential to become a major exporter of nuclear power plants.

With such a clear cost advantage and self-reliance, reports of plans to import nuclear power plants and technology indicate insufficient awareness of India's own capabilities and price competitiveness. The size of India's potential market for nuclear energy is so large that it would be rational for international suppliers to do whatever it takes to get a substantial share of this market. But would that be the optimum choice for India if costs are much higher or if it creates a new stream of technological vulnerability?

At this time, India has further strengthened its leadership in technology as its 500 MW commercial fast breeder reactor is getting commissioned after overcoming many difficult challenges. Today, India makes Pressurised Heavy Water Reactors (PHWR), which use natural uranium as fuel. The Light Water Reactors (LWRS) use enriched uranium as fuel and are based on uranium enrichment technology which is more widely used in the world. India should try and develop its own LWRS, specially as the Nuclear Suppliers Group waiver

permanently prohibits the transfer of enrichment and reprocessing technology to India. This should not be beyond India's capabilities, given sufficient resources and a dedicated programme.

Scaling up, staying self-reliant

The government has decided that by 2047, India will develop 100 GW of nuclear power capacity. To achieve this, the sector has been opened up to new entrants from both the public and private sectors through enabling legislation that is well-crafted and investor-friendly. The price of nuclear power in India is now competitive vis-à-vis thermal power. The use of the proven, cost-competitive domestic technology by new entrants would be the ideal cost-effective way to scale up. A large programme has scale effects resulting in lower production costs. Further, new entrants could potentially reduce project execution costs and time. Bringing in technology streams and equipment which will give India far more expensive electricity should not merit serious consideration.

To meet the enormous dedicated power demands of artificial intelligence data centres, small modular reactors (SMRS) are being considered as a solution in the West. However, the designs remain under development, with commercial deployment yet to begin. The AEC has offered its technology for 200 MW nuclear plants to new entrants. Smaller unit sizes to suit emerging market needs can also be developed domestically in partnership between the AEC and Indian firms. The market for SMRS in India would be a bilateral contractual matter between the generator and buyer. From a regulatory perspective, there would be merit in taking the view that a foreign-designed SMR plant should have operated satisfactorily for a few years before being deployed in India. There would be little justification for an untested SMR being developed elsewhere being first deployed, experimentally, in India.

Ambition needs caution

Given the critical importance of ensuring the safety of nuclear power plants, it would be prudent that new players establish themselves before scaling up. India's record on safety in its nuclear plants has been exemplary till now. This must be preserved going forward. This will be a major challenge amid rapid expansion and the entry of new players, given the prevailing industrial culture in India, where accidents at construction sites and operating industrial plants continue to occur.

A single nuclear mishap could trigger a strong public backlash, similar to the one experienced by the West after Chernobyl (1986), which led to nuclear power development coming to a virtual standstill in many western countries. It would, therefore, be prudent for new entrants to initially develop only a few plants and establish the rigorous internal safety culture required for nuclear facilities, subject to continuous external auditing. Scaling up can thereafter take place gradually, without needlessly risking safety. The goal of achieving 100 GW of capacity by 2047 could be achieved safely while also strengthening self-reliance within India and enabling the country to become a globally competitive player.

दैनिक भास्कर

Date: 14-07-26

एसआईआर पर उठे संदेहों का समाधान होना चाहिए

संपादकीय

युएन के तीन विशेष प्रतिवेदकों ने देशभर में जारी एसआईआर-प्रक्रिया में पारदर्शिता का अभाव पाया है। उनका इस निष्कर्ष पर पहुंचने का आधार है : पहचान प्रक्रिया में धुंधला एआई-आधारित सिस्टम, नाम हटाने का कमजोर तर्क और जनता को कागजात और दावों की पुष्टि के लिए कम समय देना । प्रतिवेदकों की रिपोर्ट पर दुनिया भारत को लेकर अपनी राय बनाती है। इसे हल्के में लेना ठीक नहीं होगा। लेकिन चुनाव आयोग ने कहा है कि रिपोर्ट में कही बातें आधारहीन हैं। उधर एक ताजा खबर के अनुसार आयोग ने नए वोटर्स के लिए फॉर्म 6 में बदलाव करते हुए एक नया खंड जोड़ा है, जिसमें आवेदकों से कहा है कि वे घोषित करें कि उनका या उनके मां-पिता का नाम पिछली निर्वाचन सूची में है या नहीं आरपी एक्ट, 1950 चुनावी तंत्र और ढांचे को लेकर है, जबकि आरपी एक्ट 1951 चुनावी प्रक्रिया के संबंध में। 1950 के कानून के सेक्शन 28 के अनुसार केंद्र आयोग से सलाह के बाद ऐसे बदलाव कर सकता है, जो उपखंड 2 (सी) में वर्णित इलेक्टोरल रोल में नाम जोड़ने या हटाने के दावों को लेकर हों। केंद्र को उपखंड 3 के तहत ऐसे संशोधनों या बदलावों को संसद से पारित करवाकर अधिसूचना जारी करनी होती है। लेकिन इस मामले में आयोग ने फॉर्म में अचानक एक नया खंड जोड़ दिया है। इन तथ्यों से संस्थाओं पर स्वेच्छाचारी होने का आभास होता है।

Date: 14-07-26

चीन के विस्तारवादी मंसूबे अब हदें पार करने लगे हैं

ब्रह्मा चेलानी, (पॉलिसी फॉर सेंटर रिसर्च के प्रोफेसर एमेरिटस)

विगत 2 जुलाई को संयुक्त राष्ट्र मुख्यालय के बाहर निर्वासित तिब्बती कार्यकर्ता लोबगा रंगजेन द्वारा आत्मदाह कर लेना किसी व्यक्तिगत निराशा की अभिव्यक्ति नहीं थी। यह हमारे समय के सबसे महत्वपूर्ण अंतरराष्ट्रीय मुद्दों में से एक- तिब्बत को नष्ट किए जाने के प्रति दुनिया की बढ़ती उदासीनता को झकझोरने का एक हताश प्रयास था।

पीपुल्स रिपब्लिक की स्थापना के तुरंत बाद चीन ने तिब्बत पर कब्जा कर लिया था। इसे अकसर मानवाधिकारों के परिप्रेक्ष्य से देखा जाता है, और इसके ठोस कारण भी हैं। लेकिन इसे एशिया की सबसे मूल्यवान भू-राजनीतिक संपत्तियों में से एक पर दावा जताने के प्रयास के रूप में भी समझा जाना चाहिए। विशाल और संसाधनों से समृद्ध तिब्बती पठार हिमालय की गोद में बसा है। इसमें एशिया की महान नदियों का उद्गम स्थल है। और यह दक्षिण, मध्य और दक्षिण पूर्व एशिया के परिप्रेक्ष्य से सामरिक महत्व का स्थान है।

हाल के दशकों में, चीन ने तिब्बत में भारी निवेश किया है। वहां पर व्यापक सैन्य बुनियादी ढांचे और विशाल बांधों का निर्माण किया है और रणनीतिक महत्व के खनिजों के खनन को भी विस्तार दिया है। लेकिन शी जिनपिंग के लिए तिब्बत पर भौतिक नियंत्रण ही पर्याप्त नहीं। वे पूरे तिब्बती पठार पर पूर्ण और स्थायी नियंत्रण चाहते हैं।

शी ने निष्कर्ष निकाला है कि इसे हासिल करने का सबसे अच्छा तरीका वहां के लोगों की पहचान को मिटा देना है। तिब्बती लोग एक विशिष्ट जातीय समूह हैं, जिनकी अपनी भाषा, परंपराएं, भोजन और पोशाक है। तिब्बतियों से उनकी पहचान छीनना और यह सुनिश्चित करना कि वे अब खुद को तिब्बती न मानें- इसका एक ही लक्ष्य है : 'विश्व की छत' पर स्थायी चीनी शासन के विरुद्ध तमाम प्रतिरोधों को खत्म करना।

अपने इसी मकसद को पूरा करने के लिए चीन ने सरकारी छात्रावासों की प्रणाली का विस्तार किया है और तिब्बती बच्चों को कम उम्र में ही वहां भेजना शुरू कर दिया है। चीन इन आवासीय स्कूलों को विकास के इंजन बताता है। जबकि हकीकत यह है कि इनका पाठ्यक्रम बच्चों की तिब्बती पहचान को मिटाने और उसकी जगह चीन के प्रति निष्ठा पैदा करने के लिए बनाया गया है।

संयुक्त राष्ट्र के विशेषज्ञों की रिपोर्ट है कि 6-18 वर्ष की आयु के दस लाख से अधिक तिब्बती बच्चे इन स्कूलों में पढ़ते हैं। उन्हें साल के अधिकांश समय अपने परिवारों और संस्कृति से अलग रखा जाता है, मंदारिन भाषा में पढ़ाया जाता है, हान संस्कृति के संपर्क में लाया जाता है और उन्हें अपनी ही संस्कृति, धर्म और भाषा को हीन समझने के लिए तैयार किया जाता है। दूसरे शब्दों में, चीन तिब्बतियों की ऐसी पीढ़ी तैयार कर रहा है, जो चीन में घुल-मिल जाए और अपनी संस्कृति भुला दे।

तिब्बत को मिटाने के लिए चीन ने अन्य कदम भी उठाए हैं। 2023 के अंत से, चीन ने अपने सरकारी दस्तावेजों, राजनयिक संचार और मीडिया में तिब्बत के आधिकारिक नाम को बदलकर शिजांग कर दिया है। यह नाम तिब्बत के लिए मंचू किंग राजवंश की शब्दावली से लिया गया है। इसे अपनाना इस बात पर जोर देने के लिए है कि तिब्बत एक अलग ऐतिहासिक इकाई नहीं है, बल्कि चीन का एक अंग ही है।

देखें तो अंतरराष्ट्रीय समुदाय ने भी इन प्रयासों में मदद ही की है। चीन के बाहर कुछ संग्रहालयों, विश्वविद्यालयों और अनुसंधान संस्थानों ने इस साम्राज्यवादी नाम-परिवर्तन को स्वीकार कर लिया है। पेरिस के

एक संग्रहालय ने तिब्बती कलाकृतियों को शिजांग से आई हुई के रूप में लेबल किया है। ब्रिटिश संग्रहालय ने सिल्क रोड पर एक प्रदर्शनी में तिब्बत या शिजांग स्वायत्त क्षेत्र का उल्लेख किया है।

अब तो चीन इस प्रयास को अगले स्तर पर ले जा रहा है। 1 जुलाई को जातीय एकता और प्रगति को बढ़ावा देने वाला एक नया कानून लागू हो गया है, जो शी की उस मुहिम के अनुरूप है, जिसके तहत तिब्बतियों और अन्य जातीय अल्पसंख्यकों को कम्युनिस्ट पार्टी के प्रति वफादारी पर केंद्रित चीनी पहचान में घुलने-मिलने के लिए मजबूर किया जाएगा। जातीय एकता के लिए कथित खतरों को अपराध घोषित करके यह कानून एक और हथियार के रूप में तिब्बती कार्यकर्ताओं, विद्वानों और प्रवासी समुदायों को डराने-धमकाने का काम कर सकता है।

चीन द्वारा दस लाख से भी अधिक तिब्बती बच्चों को मंदारिन भाषा में पढ़ाया जा रहा है, हान संस्कृति के संपर्क में लाया जा रहा है और उन्हें अपनी वास्तविक संस्कृति, धर्म और भाषा को हीन समझने के लिए तैयार किया जा रहा है।

दैनिक जागरण

Date: 14-07-26

समाधान की पहल

संपादकीय

सुप्रीम कोर्ट ने विशेष लोक अदालत के माध्यम से मथुरा, वाराणसी और संभल के धार्मिक स्थल से जुड़े विवादों के सद्भावपूर्ण हल के लिए जो पहल की, वह सराहनीय है। इससे अच्छा और कुछ नहीं कि समाधान नामक इस पहल के जरिये मथुरा की श्रीकृष्ण जन्मभूमि-शाही ईदगाह मस्जिद, वाराणसी की ज्ञानवापी मस्जिद-काशी विश्वनाथ मंदिर और संभल की जामा मस्जिद-कल्कि मंदिर संबंधी विवादों को आपसी सहमति से सुलझाने की कोई राह निकल सके।

एक समय अयोध्या विवाद का समाधान भी आपसी सहमति से निकालने के लिए कई स्तरों पर प्रयत्न किए गए थे-पहले नेताओं की ओर से, फिर इस मामले से जुड़े दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों की ओर से और अंत में सुप्रीम कोर्ट की ओर से भी, लेकिन एक पक्ष के अड़ियल रवैये के कारण किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा जा सका। बाद में सदियों पुराने इस विवाद पर सुप्रीम कोर्ट ने अपना निर्णय मंदिर के पक्ष में दिया।

यह बात और है कि मस्जिद पक्ष के कुछ लोगों को यह फैसला रास नहीं आया और वे अभी भी उसके विरुद्ध लोगों को बहकाने-बरगलाने का काम करते रहते हैं। ऐसा ही कुछ काम धार के भोजशाला मामले में भी किया जा रहा है। ज्ञात हो कि मध्य प्रदेश हाई कोर्ट ने हाल में भोजशाला को हिंदू मंदिर और संस्कृत शिक्षा का प्राचीन केंद्र करार दिया।

मथुरा, वाराणसी और संभल के मामले सुप्रीम कोर्ट की लोक अदालत के माध्यम से तभी सुलझ पाएंगे, जब दोनों पक्ष इसके प्रति प्रतिबद्धता दिखाएंगे। चूंकि इसके बहुत आसार नहीं कि मथुरा, वाराणसी और संभल के धार्मिक स्थलों से जुड़े विवादों के मैत्रीपूर्ण समाधान के लिए दोनों पक्ष आगे आएंगे, इसलिए सुप्रीम कोर्ट को इसके लिए भी तैयार रहना चाहिए कि इन विवादों का यथाशीघ्र हल उच्चतर न्यायपालिका के स्तर पर हो।

बेहतर होगा कि सुप्रीम कोर्ट 1991 के पूजास्थल कानून को चुनौती देनी वाली याचिकाओं का भी निपटारा करे, क्योंकि यह कानून न्याय के नैसर्गिक सिद्धांतों का निरादर करता है। यह विवादों को भूलने की बात करता है, जो संभव नहीं। उचित यह होगा कि सुप्रीम कोर्ट मथुरा, वाराणसी और संभल के धार्मिक स्थलों के साथ ऐसे ही अन्य विवादों के हल के लिए ऐसे किसी आयोग का गठन करे, जो यह पता लगाए कि किन स्थानों पर किसी धार्मिक स्थल को ध्वस्त कर अन्य धार्मिक स्थल जबरन निर्मित किए गए।

निःसंदेह इतिहास को बदला नहीं जा सकता, लेकिन उसकी उन भूलों को सुधारा अवश्य जा सकता है, जो पुराने घावों की तरह टीस देती रहती हैं। विश्व के कई देशों ने ऐतिहासिक अन्याय को उजागर करने और आक्रांताओं के कृत्यों की पहचान करने एवं पीड़ितों को राहत देने के लिए सत्य एवं सुलह आयोग गठित किए हैं। भारत को भी ऐसा ही करना चाहिए।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 14-07-26

स्पष्ट नीति जरूरी

संपादकीय

अखिल भारतीय उपभोक्ता उत्पाद वितरण महासंघ ने हाल ही में विदेशी स्वामित्व वाली ई-कॉमर्स कंपनियों द्वारा इस्तेमाल किए जा रहे परिचालन मॉडलों की वैधता को लेकर सवाल खड़े किए हैं। उन्होंने सरकार से आग्रह किया है कि वह दखल दे और विसंगतियों को दूर करे। यद्यपि व्यापारियों के संगठन का यह दावा कि विदेशी कंपनियों ने प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) नीति का उल्लंघन किया है, कुछ हद तक उचित हो सकता है लेकिन अब समय आ गया है कि खुदरा क्षेत्र (ऑफलाइन और ऑनलाइन दोनों) को जकड़े हुए जटिल

नियमों के व्यापक मुद्दे की समीक्षा की जाए। जैसे-जैसे प्रौद्योगिकी में हो रही तरक्की नियामक बहसों से आगे निकल रही है वैसे- वैसे नियमावली में स्पष्टता, पारदर्शिता और चुस्ती लाने की आवश्यकता है ताकि कोई भी खुदरा व्यवसाय आसानी से उसका पालन कर सके। सरल नियमों से उद्योग द्वारा अनुपालन स्तर में वृद्धि हो सकती है और साथ ही निवेशकों को आकर्षित करने में भी मदद मिलेगी।

ई-कॉमर्स का आकार वर्तमान 90-100 अरब डॉलर से बढ़कर 2030 तक लगभग 250 अरब डॉलर तक पहुंचने की उम्मीद है। उसके लिए एक व्यापक और स्पष्ट नीति के एकल संदर्भ केंद्र की आवश्यकता है ताकि हितधारकों को विभिन्न प्रकार की अनुमति और स्पष्टीकरण के लिए एक विभाग से दूसरे विभाग तक दौड़ना न पड़े। आमतौर पर एक ई-कॉमर्स कंपनी और खासकर विदेशी स्वामित्व वाली कंपनी को अलग-अलग आवश्यकताओं के लिए कम से कम आठ से नौ मंत्रालयों या विभागों से जुड़ना पड़ता है। वर्षों से बन रही देश की ई-कॉमर्स नीति को व्यापार सुगमता में मदद करनी चाहिए। खुदरा क्षेत्र का आकार पिछले वर्ष 1 लाख करोड़ डॉलर से अधिक था और इसके 2030 तक 2 लाख करोड़ डॉलर पार करने का अनुमान है। इस क्षेत्र की नीतियां कई दशकों से राजनीतिक रूप से संवेदनशील रही हैं और सरकार किसी भी दल की हो, फर्क नहीं पड़ता। इससे खुदरा क्षेत्र को कई नामकरणों और दिशानिर्देशों में परतदार बना दिया गया है। अन्य देशों में ऐसा मॉडल देखने को नहीं मिलता।

बहु-ब्रांड खुदरा में एफडीआई 2012 में नीति अधिसूचित होने के बाद भी स्थगित है। इसमें 51 फीसदी तक विदेशी निवेश की अनुमति दी गई थी। किराना दुकानों या छोटे खुदरा विक्रेताओं की रक्षा करना वॉलमार्ट जैसे विदेशी बहु-ब्रांड कारोबारियों का विरोध करने का प्रमुख कारण रहा है। ध्यान रहे यह एक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक मतदाता वर्ग है। बहु-ब्रांड के विपरीत एकल ब्रांड खुदरा में एफडीआई काम कर पाया है। इनमें 100 फीसदी तक विदेशी निवेश की अनुमति है। ऐपल आइकिया और एचऐंडएम जैसे प्रमुख अंतरराष्ट्रीय ब्रांड ने वर्षों की बातचीत के बाद 100 फीसदी एफडीआई मार्ग से भारत में प्रवेश किया। फ्रैंचाइजी मार्ग विदेशी ब्रांडों के लिए एक अन्य प्रारूप है जिसके लिए फिर अलग-अलग नियम हैं। बॉलमार्ट और कारफू जैसे कुछ अंतरराष्ट्रीय ब्रांडोंने अपने बहु-ब्रांड महत्त्वाकांक्षाओं के भारत में असफल होने के बाद बिजनेस टु बिजनेस लेनदेन के लिए कैश- ऐंड कैरी प्रारूप का प्रयोग किया।

ई-कॉमर्स ने हलचल मचा दिया और अंतरराष्ट्रीय प्रमुख ब्रांड इस क्षेत्र में आए। हाल ही में उन्होंने क्विक कॉमर्स खंड में भी प्रवेश किया। वॉलमार्ट (फ्लिपकार्ट में बहुसंख्यक हिस्सेदारी के रूप में) और एमेजॉन दोनों ही ई-कॉमर्स और क्विक कॉमर्स में अपने निवेश बढ़ा रहे हैं। ठीक वैसे ही जैसे पारंपरिक खुदरा नियमों में होता है, ई- कॉमर्स के लिए दिशानिर्देश कंपनी द्वारा अपनाए गए प्रारूप पर निर्भर करते हैं। इसलिए ऑनलाइन प्रारूपों की एक खिचड़ी है जिसमें एफडीआई नियमों की एक पूरी श्रृंखला है। इसमें इन्वेंटरी आधारित, मार्केटप्लेस, भारत में निर्मित खाद्य पदार्थ, अंतरराष्ट्रीय खाद्य ब्रांड आदि शामिल हैं। निर्यात के लिए भी एक अलग श्रेणी आ सकती है। व्यापारियों के संगठन की हालिया शिकायत इन्वेंटरी आधारित और मार्केटप्लेस प्रारूपों के बीच अंतर से उत्पन्न होती है। ई-कॉमर्स एफडीआई के नियमों के अनुसार विदेशी स्वामित्व वाली ई-कॉमर्स और

क्विक कॉमर्स कंपनियां इन्वेंट्री का स्वामित्व नहीं रख सकतीं लेकिन वे गोदाम अधोसंरचना स्थापित करने में मदद कर सकती हैं। ऐसा अंतर न केवल निवेशकों को आकर्षित करने में बाधा डालता है बल्कि किसी भी अंतरराष्ट्रीय मंच पर समान अवसर की धारणा के विरुद्ध भी माना जा सकता है।

Date: 14-07-26

महिलाओं के लिए सीमित अवसरों वाली अर्थव्यवस्था

कनिका दत्ता

अगर यह साबित करने की जरूरत हो कि महिलाओं के स्वामित्व वाले कारोबार और महिलाओं के रोजगार के बीच गहरा सकारात्मक संबंध है तो इसका स्पष्ट प्रमाण राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय (एनएसओ) द्वारा जारी जनवरी - दिसंबर 2025 के वार्षिक असंगठित क्षेत्र उद्यम सर्वेक्षण (एएसयूएसई) में मिलता है। भारत के शहरी असंगठित क्षेत्र के आंकड़े बताते हैं कि 10 लाख से अधिक आबादी वाले 46 बड़े शहरों में जहां महिलाओं के स्वामित्व वाले उद्यम अधिक हैं, वहां महिलाओं के लिए रोजगार के अवसर भी अपेक्षाकृत अधिक दिखाई देते हैं। उदाहरण के लिए, ग्रेटर विशाखापत्तनम में लगभग 31 फीसदी कारोबार महिलाओं के स्वामित्व में हैं और वहां कार्यबल में महिलाओं की हिस्सेदारी 42.5 फीसदी है। इसी तरह, सूरत में महिलाओं के स्वामित्व वाले कारोबारों की हिस्सेदारी 43.2 फीसदी है, जबकि वहां कुल कार्यबल में महिलाओं की भागीदारी 41.4 फीसदी दर्ज की गई है।

दिलचस्प बात यह है कि बिजनेस स्टैंडर्ड द्वारा इन विस्तृत आंकड़ों के विश्लेषण से पता चलता है कि जिन शहरों की अनौपचारिक अर्थव्यवस्था विनिर्माण और सेवाओं की जगह मुख्य रूप से व्यापार पर आधारित है, वहां महिलाओं की भागीदारी सबसे कम है। सर्वेक्षण वाले आठ ऐसे शहरों में, जहां व्यापार का वर्चस्व है वहां महिलाओं की कार्यबल में हिस्सेदारी 20 फीसदी से भी कम है। राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली इसका प्रमुख उदाहरण है, जहां केवल 16.2 फीसदी व्यवसाय महिलाओं के स्वामित्व में हैं और कार्यबल में उनकी हिस्सेदारी लगभग 13 फीसदी है। वहीं, श्रीनगर इस सूची में सबसे नीचे है, जहां महिलाओं के स्वामित्व वाले व्यवसाय केवल 9.9 फीसदी हैं और कार्यबल में उनकी भागीदारी भी लगभग 10 फीसदी ही है।

सर्वेक्षण के निष्कर्षों से एक स्पष्ट संदेश सामने आता है कि जिस क्षेत्र में महिलाओं का उद्यमिता में योगदान अधिक होगा, वहां महिलाओं के रोजगार के अवसर भी बेहतर होंगे। हालांकि, एएसयूएसई के ये आंकड़े यह संकेत नहीं देते कि देश में महिलाओं की श्रम भागीदारी दर में कोई बहुत बड़ा या तेज बदलाव आ गया है। इसी प्रकार, भारत के 10 लाख से ज्यादा आबादी वाले 46 से अधिक शहरों में महिला श्रम बल भागीदारी दर आठ वर्षों के उच्चतम स्तर पर पहुंचने जैसे तथ्य भी यह साबित नहीं करते है कि महिलाओं की रोजगार स्थिति में व्यापक और स्थायी परिवर्तन आ चुका है।

वास्तव में, यदि यह देखा जाए कि वर्ष 2018 में महिलाओं की श्रम बल भागीदारी दर 19.8 फीसदी थी जो बढ़कर 2025 में 27.2 फीसदी हो गई तब यह स्पष्ट होता है कि सुधार के बावजूद महिलाओं और पुरुषों के बीच का अंतर अब भी चिंताजनक रूप से बड़ा बना हुआ है। यही असमानता औसत मासिक वेतन और आय में भी दिखाई देती है। वेतनभोगी कर्मचारियों के मामले में महिलाओं की औसत मासिक आय, पुरुषों की तुलना में लगभग 7,000 रुपये प्रतिमाह कम है जबकि स्वरोजगार करने वालों के बीच यह अंतर लगभग 17,000 रुपये तक पहुंच जाता है।

हालांकि, असंगठित क्षेत्र में महिलाओं के स्वामित्व वाले व्यवसायों से जुड़े आंकड़े यह संकेत भी देते हैं कि यदि सोच-समझकर और जरूरतों के अनुरूप नीतियां बनाई जाएं तब महिलाओं की व्यावसायिक वित्त तक पहुंच को काफी बेहतर बनाया जा सकता है। इस संदर्भ में भारतीय महिला बैंक का उदाहरण उल्लेखनीय है जो एक अच्छी मंशा के बावजूद सफल नहीं हो सका । बैंक का संचालन पूरी तरह महिलाओं द्वारा किया जाता था और यह केवल महिलाओं को ही ऋण देता था। लेकिन इसके अधिकांश ऋण ऐसे कारोबार के लिए थे जिन्हें समाज पारंपरिक रूप से महिलाओं के लिए उपयुक्त मानता है, जैसे रसोई का आधुनिकीकरण, स्पा, ब्यूटी पार्लर, डे-केयर सेंटर आदि ।

प्रेस सूचना ब्यूरो (पीआईबी) के अनुसार, भारतीय महिला बैंक ने अपने पूरे कार्यकाल में महिलाओं को केवल लगभग 192 करोड़ रुपये का ऋण वितरित किया जबकि भारतीय स्टेट बैंक की महिला - विशेष शाखाओं ने लगभग 46,000 करोड़ रुपये के ऋण दिए। हालांकि, भारतीय महिला बैंक की सबसे बड़ी कमी यह थी कि वह महिलाओं की वास्तविक आवश्यकताओं के अनुरूप ऋण व्यवस्था के नियम नहीं बना सका।

भारतीय स्टेट बैंक (एसबीआई) और अन्य सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों ने महिलाओं को बैंकिंग प्रणाली से जोड़ने में अच्छी सफलता हासिल की है लेकिन महिलाओं के लिए संस्थागत ऋण का दायरा आज भी बहुत सीमित है। इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली (ईपीडब्ल्यू) में प्रकाशित एक अध्ययन के अनुसार, महिलाओं का ऋण जमा अनुपात केवल 43 फीसदी है जबकि पुरुषों के लिए यह 93 फीसदी है। इतना ही नहीं, अध्ययन में यह भी बताया गया है कि जिन क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधाएं अपेक्षाकृत अधिक विकसित हैं, वहां भी ऋण तक पहुंच के मामले में महिलाओं और पुरुषों के बीच की खाई और अधिक चौड़ी दिखाई देती है ।

आखिर इसकी वजह क्या है? इसका एक प्रमुख कारण बैंकों की जटिल और कठोर ऋण प्रक्रियाएं हैं जो अनजाने में महिलाओं के विरुद्ध संस्थागत पक्षपात को बढ़ावा देती हैं। भारत में महिलाओं को सामाजिक रूप से अपेक्षाकृत कमजोर स्थिति का सामना करना पड़ता है। उनके नाम पर भूमि, मकान या अन्य संपत्ति जैसी गिरवी रखने योग्य परिसंपत्तियां कम होती हैं, जिससे उन्हें ऋण लेने में कठिनाई होती है। जनधन योजना जैसी पहल के कारण बड़ी संख्या में महिलाओं के बैंक खाते तो खुले, लेकिन इन खातों पर उनका वास्तविक नियंत्रण अभी भी सीमित है। इनमें से अनेक खाते निष्क्रिय हैं या उनमें बहुत कम राशि जमा रहती है। यही कारण है कि बड़ी संख्या में महिलाएं आज भी सूक्ष्म वित्त संस्थानों और अनौपचारिक ऋण व्यवस्था पर निर्भर रहती हैं क्योंकि वहां की शर्तें उनकी आर्थिक परिस्थितियों के अधिक अनुकूल होती हैं और व्यापक रूप से यह भी माना जाता है कि महिलाएं अपेक्षाकृत अधिक भरोसेमंद उधारकर्ता होती हैं।
इस पूरी स्थिति में एक विडंबना भी छिपी हुई है। एक ओर महिलाएं आर्थिक अवसरों और रोजगार से वंचित रहने के लिए संघर्ष कर रही हैं, वहीं दूसरी ओर भारत की सक्रिय विवाह व्यवस्था में उन्हें एक आर्थिक संपत्ति के रूप में देखा जाता है। लेकिन यह दृष्टिकोण उनकी स्वतंत्रता और निर्णय लेने की क्षमता को मजबूत करने के बजाय उन्हें लालची पति और ससुराल पक्ष द्वारा उत्पीड़न, दहेज उत्पीड़न और यहां तक कि हत्या जैसी जघन्य घटनाओं के प्रति अधिक असुरक्षित बना देता है।

21 वीं सदी के तीसरे दशक में पहुंच जाने के बावजूद मीडिया में आज भी दहेज हत्या जैसी दर्दनाक घटनाएं लगातार सामने आती हैं। चिंता की बात यह है कि इन अपराधों में केवल गरीब परिवार ही नहीं बल्कि शिक्षित और मध्यमवर्गीय परिवार भी शामिल होते हैं। ऐसी घटनाएं इस बात की ओर स्पष्ट संकेत करती हैं कि महिलाओं का आर्थिक रूप से अधिक आत्मनिर्भर और वित्तीय रूप से सशक्त होना आज पहले से कहीं अधिक आवश्यक हो गया है।

Live हिन्दुस्तान.com

Date: 14-07-26

बदले की भावना

संपादकीय

पश्चिम एशिया में बदले की भावना के चलते वरता की तमाम हदें कई बार] पार हुई है। अफसोस, ईरान में फिर यही भावना सिर चढ़कर बोल रही है। ईरान के एक कट्टरपंथी अखबार ने इन्क्रेफिक प्रकाशित किया है, जिसमें 13 विदेशी नेताओं के नाम है। अखबार ने दावा किया है कि गन के सर्वोच्च नेता अतुल्ला अलीखामेनेई की हत्या के बदले में इन नेताओं को निशाना बनाया जाएगा। गौर करने की बात है कि ईरानी प्रशासन ने

इसका समय रहते खंडन नहीं किया है। ईरान के नेता मोजता खामेनेई ने 28 फरवरी को पिता की मौत का बदला लेने की कसम खाते हुए कहा था, 'बदला हमारे राष्ट्र की इच्छा है और इसे जरूर पूरा किया जाना चाहिए। जब किसी देश का सर्वोच्च नेता खुलेआम ऐसा इजहार करेगा, तो देशवासियों में क्या पैगाम जाएगा ? ईरान का यह इजहार एक बड़े खतरे की ओर इशारा है।

एक तरह से ईरान के सीकेशन के इस कट्टरपंथी अखबार ने खतरनाक इरादे से दुनिया को कराया है। अब दुनिया में स्वाभाविक हो चिंता की लहर है। जिन नेताओं से ईरान बदला लेना चाहता है, उनके नाम कुछ इस प्रकार है- डोनाल्ड ट्रेने या मेलोनी की स्टारर इमेनुएल मैक्रों, फ्रेडरिक मर्ज इत्यादि। सूची में अमेरिका और इजरायल के नेताओं के यूरोपीय नेताओं के नाम देखकर चिंता होती है।

ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी और इटली के नेताओं ने ईरान का क्या बिगाड़ा है? दरअसल, ईरान को उम्मीद थी कि इन देशों के नेता ईरान पर हुए हमले की कड़ी निंदा करेंगे यूरोप के ये देश रोकार कतई नहीं थे। फिर भी है कि कुछ यूरोपीय देशों ने अमेरिका को अपने वायु क्षेत्र का इस्तेमाल करने दिया है। यहां ईरान की नाराजगी को समझा जा सकता है,

कि देशों के राष्ट्राध्यक्षों को निशाना बनाकर बदला लिया जाए। अमेरिका ने जो किया उसकी दुनिया के ज्यादातर देश करते हैं। किसी भी देश में घुसकर उसके नेता को निशाना बनाने की अमेरिकी मनमानी की तारीफ कोई नहीं कर सकता पर जब बदले का फितूर ही हो जाता है, तब नियम-कायदे और न तहजीब की बातें किनारे रख दी जाती हैं। करमती से ईरान ऐसा ही करता दिखा रहा है और यह प्रवृत्ति दुनिया के लिए घातक है।

बदले की ऐसी भावना से ही पश्चिम एशिया में बुद्ध फिर भड़क गया है। अमेरिकी भूमि तो ईरान से बहुत दूर है, लेकिन ईरान ने बहरीन, रक्त और परह करके जबाब दिया है। अमेरिका-इजरायल भी ईरान में बड़े हमले कर रहे हैं। तनाव चरम पर है। होन जलमार्ग पर यातायात फिर प्रभावित हुआ है। मतलब दुनिया की तमान अर्थव्यवस्थाओं पर बुरा असर पड़ना तय है। बहुत मुश्किल से दोनों पक्षों के बीच शांति की स्थिति बनी थी, सहमति पत्र पर हस्ताक्षर हुए थे। शांति समझ पर बात चल रही थी, लेकिन अब सब कुछ बिगड़ता लग रहा है। ट्रंप के करीबी रीनेटर लिंडा की मौत भी बढ़ेगा। अमेरिका में इस मी की जांच हो रही है कि इसके पीछे ईरान की कोई साजिश तो नहीं है। अब अगर दो-तीन देश ईरान के साथ खुलकर आ गए, तो विश्व युद्ध जैसी स्थिति बन जाएगी। दोनों ही तरफ सेवम और समझदारी का अभाव साफ दिख रहा है। दुनिया के आम लोग तो नहीं देखना चाहेंगे कि समाधान या समझौता की कोशिशें कौन शुरू करेगा?